द्वितीय अध्याय

'भक्तिकालीन परिस्थितियाँ'

द्वितीय अध्याय

भक्तिकालीन परिस्थिति

हिन्दी साहित्य में " भक्तिकाल " की शुरुआत चौदहवीं शताब्दि से हो गयी । " भक्तिकाल " को हिन्दी साहित्य का " पूर्व मध्यकाल " भी कहा गया है । आचार्य शुक्ल जी ने संवत् 1375 से 1700 तक की कालावधी को "भक्तिकाल" माना है । "भक्तिकाल" से पूर्व की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियों ने भारत में " भक्तिकाल " को जन्म दिया । इस समय भारत में महान भक्त आत्माओं का उदय हुआ ।

भक्तिकाल का आरम्भ तुर्कों के आक्रमण समाप्त होने के बाद हुआ । इसका अंत जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में हुआ । मुगल शासकों का यह वैभवपूर्ण एवं ऐश्वर्यपूर्ण युग था । भक्तिकाल की विभिन्न परिस्थितियाँ निम्नप्रकार हैं..

(1) राजनीतिक परिस्थिति

(2) सामाजिक परिस्थिति

(3) धार्मिक परिस्थिति

(4) आर्थिक परिस्थिति

(5) दार्शनिक परिस्थिति

(6) साहित्यिक परिस्थिति

(7) सांस्कृतिक परिस्थिति

इन परिस्थितियों का संक्षिप्त विवेचन इसप्रकार है --

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

<u>राजनीतिक परीस्थिति</u> :

सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद भारतवर्ष का पूरा साम्राज्य अनेक भागों में विभाजित हो गया । सभी भागों में परस्पर संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी । फलतः इन भागों में अशान्ति और अव्यवस्था आ गयी । डॉ॰शिवकुमार शर्मा ने राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के "भक्तिकाल" को दो भागों में विभाजित किया है ।

§1§ <u>प्रथम भाग</u> :

सं॰1375 से 1583 तक, इस काल में दिल्ली पर तुगलक और लोधी वंश के शासकों का अधिकार था ।

§2§ <u>द्वितीय भाग</u> :

सं॰ 1583 से 1700 तक, इस काल में दिल्ली पर मुगल शासक बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने अपना राज्य प्रस्थापित किया । डॉ॰हरिश्चन्द्र वर्मा और डॉ॰रामनिवास गुप्त ने चौदहवीं शती के मध्य से लेकर सत्रहवीं शती के मध्यतक दिल्ली के सिंहासन पर लोधी वंश § सन 1450-1526§ तथा मुगल सम्राटें- बाबर § सन 1526-1530§, हुमायूँ § सन 1530-1539§, अकबर §1556-1605§, जहाँगीर §1605-1628§ तथा शाहजहाँ § सन 1628-1658§ आदि का आधिपत्य माना है । इनके बाद उन्होंने सुरी वंश के शासक शेरशाह सूरी और इस्लामशाह सूरी का अधिकार माना है ।

इस युग में विदेशी होते हुए भी तुर्क शासकों ने इस देश पर अपना अधिकार प्रस्थापित किया था । वे भारतीय बन चुके थे । पूरा भारत विदेशी हाथों में चला गया था । मोहम्मद बिनकासिम से लेकर बाबर, शेरशाह, हुमायूँ आदि ने भारत

12059

पर कई आक्रमण किये थे । सभी आक्रमणकारी निर्दय, पाशविक और अधार्मिक थे । यह आक्रमण शक्ति-प्रदर्शन, सत्ता, सुन्दरी एवं अहम् के कारण होता था । इस समय पूरे भारत में मुगल शासन का वर्चस्व था । मुगलों का प्रमुख लक्ष्य हिंदुओं को पराजित कर अपने साम्राज्य का विस्तार करना था । इन मुगलों को हमेशा देशी शासकों के साथ प्रतिकार करना पड़ा । हिन्दू राजाओं का जीवन परस्पर युध्द करने में व्यतीत हुआ । इन्होंने अपने स्वार्थ के लिए भाइयों में वैमनस्य होते हुए भी निःस्संकोच रूप से मुगल बादशाहों की सहायता की थी । हिन्दू राजा आपस में लडते थे । आपस में लड़ते हुए उनका सामर्थ्य नष्ट हो गया था । शत्रु का सामना करने का बल उनमें न रहा । परिणामतः राजनीतिक व्यवस्था विषम हो गयी । राजा और सुल्तानों में उच्छृंखलता बढ़ गयी । उत्तराधिकारी के संबंध में अनिश्चितता आ गयी । " कोऊ नृप होय हमै का हानि" इस उक्ति के अनुसार जनता में उदासीनता फैल गयी । राज्यों में अशांति, असुरक्षितता, अनिश्चितता का वातावरण छा गया ।

कुछ मुगल शासक धर्मान्ध थे । उन्होंने भारत में इस्लाम राज्य स्थापित किया, साथ ही इस्लाम को राजधर्म के नाम से घोषित किया । हिन्दू धर्म के प्रति उनकी आस्था नहीं थी । वे हिन्दू धर्म को नष्ट करना चाहते थे । हिन्दुओं को लालच और भय दिखाकर धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करते थे । हिन्दू लोग, जिनमें अपने धर्म के प्रति निष्ठा थी; जिन्होंने धर्मपरिवर्तन करने के लिए विरोध किया; उन्हें मुगल शासकों का दंड एवं अत्याचार सहना पड़ा । हिन्दुओं की स्थिति दुर्दशाग्रस्त, विपन्न, दयनीय बन गयी । मुगल काल के हिन्दुओं की स्थिति के संबंध में डॉ॰कल्याणसिंह शेखावत ने कहा है - " एक एक दिन में 1500 हिन्दुओं की हत्या की गई । हिन्दुओं को मार मारकर उनके सिरों के ढेर के ढेर लगाए गए, संतों पर हाथी चलाए गए । नारियों की लज्जा लूटी गई । "[1]

देश में मुगल शासकों का राज्य स्थापित हो जाने पर हिन्दू लोगों के हृदय में रहा गौरव, गर्व, उत्साह, बल नष्ट होने लगा । हिन्दू लोग अपनी आँखों से देख रहे थे कि उनके सामने मंदिर गिराए गए, देवमूर्तियाँ भी तोडी गयीं, पूज्य पुरुषों का

अपमान किया गया । मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दू असहाय बनकर मौन रहने लगे । मुगल शासकों के बार-बार आक्रमणों के कारण भारतवर्ष का राजनीतिक जीवन अस्थिर बन गया । इसके संबंध में डॉ॰सुमन शर्मा ने लिखा है - " 13 वीं शताब्दि से 18 वीं शताब्दि तक देश की परिस्थितियाँ बड़ी विषम थीं । मध्य युग में भारतवर्ष पराधीनता की बेडियों में आबध्द हो चुका था । "[2]

मुगल साम्राज्य का विस्तार हो जाने पर शासन व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गयी मुगल शासकों का सारा ध्यान और शक्ति भारत में अपना दृढ़ शासन प्रस्थापित करने में लगी रही । पूरी शासन व्यवस्था सामन्ती ढाँचे की थी । फलतः शासक ही सर्वश्रेष्ठ हो गया । इसलिए इस काल में प्रजा चाहे हिंदू हो या मुसलमान पीड़ित और निराश थी । अतः डॉ॰गणपतिचन्द्र गुप्त इस काल को भारतीय जनता का पराधीनता का काल मानते हैं ।

मुगल शासकों का हिन्दू राजाओं पर आक्रमण और हिन्दू राजाओं की आपस में युध्द करने की वृत्ति के कारण चारों ओर वीरता का बोलबाला होता रहा । हिन्दुओं पर मुगल सल्तनत की आततायी तलवार का कठोर शासन था । सैनिक बादशाह और राजा का आदेश मानते थे । स्वयं को विजयी बनाने के लिए युध्द में अपनी वीरता दिखाते हुए अपना प्राण त्याग देते थे ।

अल्लाउद्दीन खिलजी ने महाराष्ट्र जीत लिया और दक्षिण भारत में अपना मुगल शासन पहुँचाया । अल्लाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के बाद दिल्ली का शासन ढीला पड़ गया । इसके बाद गयासुद्दीन तुगलक ने मुगल शासन की तरक्की की । इसने अपना साम्राज्य बंगाल, महाराष्ट्र और आंध्र तक फैला दिया । इसके बाद दिल्ली का शासन फिरोज तुगलक के हाथ में पहुँचा । इस काल के खिलजी, तुगलक, सैयद, लोधी आदि मुगल शासक कट्टर सांप्रदायिक, अत्याचारी और सत्तालोलुप थे ।

15 वीं शताब्दि में प्रान्तीय शासकों का युग था । जौनपुर, मालवा, गुजरात, बंगाल, कश्मीर, राजस्थान आदि में स्वतंत्र रियासतें बन गयीं । इन रियासतों में हमेशा किसी न किसी कारण संघर्ष होता था । इनमें परस्पर वैमनस्य एवं विद्वेष था । ये संगठित होकर किसी बलशाली विदेशी आक्रमक का सामना न कर सकते थे । अतः हिन्दू जनसमुदाय में उदासी छाने लगी थी । सामन्त सामान्य जनता का शोषण कर रहे थे । इन सामन्तों का जीवन भोगविलासपूर्ण और समृध्द था । पराभूत जनता पर आक्रमणकारी पाशविक अत्याचार कर रहे थे । युध्द में निर्मम जनसंहार होता था । अतः अनेक गाँव निर्जन हो जाते थे । फसलें जलायी जाती और गाँव भी लूटे जाते थे । ऐसे समय नारी को आदर या सम्मान की दृष्टि से देखा नहीं गया । नारी के सतीत्व का क्षय होने लगा । नारी की दशा के संबंध में डॉ॰भगवानदास तिवारी लिखते हैं- " इस युग में हाथ की चूडियाँ, माँग का सिन्दूर, गोदी के लाल सबका अस्तित्व भय से आतंकित था । "[3]

विभिन्न राजा अपनी मर्जी के अनुसार राज्य करते थे । राजा को प्रजा की चिंता नहीं थी । राजा हिंसक, क्रूर, निर्दय बन गये थे । राज सत्ता के स्वार्थ में आकर पुत्र पिता का, भाई भाई का, भतीजा चाचा का धोखे से वध कर देते थे । अतः यह काल प्रतिशोध, विश्वासघात एवं प्रतिहिंसा का था ।

इस समय राजस्थान में मेवाड की खूब उन्नति हुई । पश्चिम भारत में महाराणा लाखा, चूड़ा और कुंभा का शासन था । इनका प्रशासन मेवाड़ की शक्ति बन गया था । मुगल शासन में अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का समय शान्त और स्थिर था । इस समय को छोड़कर बाकी सारा समय गृहकलह, विदेशी आक्रमण, युध्दों का रहा । इस काल में सब से महत्वपूर्ण बात यह थी कि अधिकांश मुगल शासक भारतीय थे । इनके मंत्री और सलाहकार भी हिन्दू होते थे । 16 वीं शताब्दि में प्रमुख शासक के रूप में मेवाड़ में राणा सांगा तथा दक्षिण में विजयनगर में कृष्णदेवराय थे ।

आगे चलकर अकबर ने भारत के भाग्य का फैसला किया । उसने अपनी नीति से सभी प्रादेशिक शासकों को अपने अधीन बनाया । इस समय मुगल शासन स्थिर था । अकबर ने अपनी योग्यता के सहारे हिन्दुओं को ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित किया ; परंतु एक बात दुःखपूर्ण थी, वह यह कि मुगल बादशाह और उनके अधिकार में रहे हिंदू राजा दोनों का जीवन विलासी बन गया । इनका अधिकांश समय राजकार्य के बदले नाच-रंग, शराब में व्यतीत होने लगा । फिर भी अकबर ने अपने सशक्त साम्राज्य की स्थापना की । इसके काल में मुगल साम्राज्य का विस्तार एवं चरमोत्कर्ष हुआ । इसके संबंध में डॉ॰रामबहोरी शुक्ल ने कहा है -- " अकबर का साम्राज्य अपने समय में दुनिया का सबसे बडा साम्राज्य था । "[4] जहाँगीर विलासी शासक होते हुए भी कलाप्रेमी था । शाहजहाँ जहाँगीर की तरह उदार कलाप्रेमी बन गया । इसके शासन काल में बुंदेलखंड में चंपतराय और महाराष्ट्र में शिवाजी ने अपना स्वतंत्र राज्य बनाने का प्रयत्न किया । शाहजहाँ का पुत्र औरंगजेब मात्र संकुचित एवं कट्टर धार्मिक था । अतः महाराष्ट्र का शिवाजी, बुंदेलखंड का छत्रसाल, मारवाड का दुर्गादास राठोड़ सभी उसके शत्रु बन गये ।

इस तरह यह युग राजनीतिक दृष्टि से अव्यवस्था और अत्याचार से अशांत बना था । भारतवर्ष पर अधिकतर मुगल शासकों का शासन रहा; किन्तु इन्हें हमेशा देशी राजाओं का प्रतिकार सहना पड़ा । सभी मुगल शासक कट्टर एवं संकीर्ण हृदय के नहीं थे । अकबर मुगल बादशाह जैसे के उदार प्रशासन में हिन्दुओं को अच्छा पद प्राप्त हुआ और उनके साहित्य संगीत और कला आदि को प्रेरणा मिली ।

सामाजिक परीस्थिति :

इस काल में निरन्तर युध्द होते थे । अतः जनजीवन असुरक्षित होने लगा सर्वत्र अराजकता का साम्राज्य छा गया था । धर्म की दृष्टि से इस काल में दो वर्ग बन गये । 1) हिंदू वर्ग और 2) मुसलमान वर्ग । हिन्दुओं में वर्णाश्रम व्यवस्था प्रचलित थी; परंतु अब उस व्यवस्था का आस्तित्व नष्ट होने लगा था । सामाजिक दृष्टि

से मुसलमान शासक सुखी और संपन्न थे । वे अपना जीवन भोग-विलास एवं वैभव में व्यतीत करने लगे थे । सामाजिक दृष्टि से हिंदू क्षत्रियों के अतिरिक्त समाज का दूसरा शक्तिशाली वर्ग ब्राहमणों का था । वैश्यों की स्थिति अच्छी थी । शूद्र वर्ग दयनीय बन गया था । हिन्दुओं में छायी निराशा के कारण उनके हृदय का गौरव और स्वाभिमान नष्ट होता चला गया । फलतः समाज में कुरीतियाँ फैल गयीं । शासकों का अनुकरण करते हुए प्रजा का जीवन विलासपूर्ण बन गया ।

मुगल दरबार के जागीरदार, मनसबदार समृध्दशाली थे । अपने शासक की तरह ये भी ऐश्वर्य, वैभव एवं विलास के प्रेमी थे । उनका रहन-सहन, वेश-भूषा, शाही-महल आदि उनकी विलासिता का प्रतीक था । इनमें मदिरा पीने की आदत बढ गयी थी । अधिकांश लोग भी अपना जीवन शराब में व्यतीत कर रहे थे । यह स्थिति देखते हुए औरंगजेब ने स्वयं कहा था कि उस समय हिंदुस्थान में दो ही व्यक्ति ऐसे थे कि जो शराब नहीं पीते; उसमें एक स्वयं औरंगजेब और दूसरा उसका काजी । इस स्थिति के परिणाम के बारेमें डॉ॰गणपतिचन्द्र गुप्त ने कहा है -- " शासक वर्ग के लोग इतने मद्यपि थे कि अनेक शाहजादे केवल अति मद्यपान के कारण प्राण खो चुके थे । "[5] प्रजा की चिन्ता मुगल शासकों को नहीं थी । बलबन और अल्लाउद्दीन समाज सुधार का प्रयत्न करते रहे, परंतु इस क्षेत्र में वे विशेष प्रभावशाली सिध्द न हो सके । राजकीय अधिकारियों का आचरण भ्रष्ट और असभ्य था । लोगों को न्याय देना यह काजियों और मुल्लाओं पर निर्भर था ।

इस युग में सामाजिकता की दृष्टि से दो परस्पर भिन्न संस्कृतियों और विचारधाराओं में स्पष्ट संघर्ष था । हिन्दू संस्कृति प्राचीन परंपरा का जतन कर रही थी मुस्लिम संस्कृति में धार्मिक उन्माद था । इसलिए हिन्दू संस्कृति के अस्तित्व को बाधा पहुँच रही थी । हिन्दू और मुस्लिमों में परस्पर घृणा भाव बढता गया । दूसरी ओर हिन्दू मुसलमानों में धर्म-भेद होते हुए भी पास-पड़ोस में रहने के कारण उनमें एक दूसरे के प्रति उदारता बढ़ने लगी । इस्लामी संस्कृति का भारतीकरण भी होने लगा था। इसका प्रतीक तत्कालीन वास्तु, चित्रकला, धर्म और काव्य के क्षेत्र में प्रतिबिंबीत हुआ है।

मुस्लिम शासकों ने विशाल भवन, मकबरे आदि का निर्माण किया । फारसी भाषा के प्रचार और प्रसार स्वरूप हिन्दी-फारसी में आदान-प्रदान भी हुआ । इन दिनों हिन्दू-मुसलमानों में परस्पर विवाह भी होने लगे थे । हिन्दू सामन्तों का विवाह कश्मीर के सुलतान शाहमीर की लड़कियों के साथ हुआ था और कश्मीर के सुलतान का बेटा अल्लेशर का विवाह हिन्दू सेनापति की बेटी के साथ हुआ था । फलतः कभी एक ही परिवार के व्यक्ति कुछ हिन्दू रह जाते तो कुछ मुसलमान हो जाते । लड़की को पति का धर्म स्वीकारना पड़ता था ।

मुसलमान इस्लाम धर्म की स्थापना करना चाहते थे । इसलिए उन्होंने मूर्तिपूजा पर प्रतिबन्ध लगा दिया । हिन्दू मंदिरों को गिरा दिया । उन पर धार्मिक कर के नाम से " जजिया " कर लगा दिया । महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी के समय हिन्दुओं को विपत्तियों का सामना करना पड़ा । उन्होंने इस्लाम धर्म का स्वीकार न करनेवाले हजारों हिन्दुओं को मार डाला था । परिणामतः अधिकांश लोगों ने इस्लाम धर्म का स्वीकार किया । हिन्दुओं द्वारा उपेक्षित जातियों ने भी इस्लाम धर्म स्वीकारा । इससे हिन्दू समाज की शक्ति का ऱ्हास होता गया । एक ही धर्म को माननेवाली ऊँची और नीची जातियों में एक-दूसरे के प्रति तिरस्कार की भावना थी । हिन्दुओं में उँच-नीच का भेद था और मुसलमानों में शिया-सुन्नियों का झगड़ा था ।

हिन्दू समाज में उँचनीचता के साथ-साथ आपसी फूट, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा की भावना बढ़ती गयी । उँच-नीच का भाव पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था । हिन्दू समाज का वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो गया था । इसका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है --

" बरन धरम नहिं आश्रम चारी ।
श्रुति विरोध रत सब नर नारी । "

हिन्दुओं की अवस्था पतनोन्मुख थी । उनमें दास्यवृत्ति निर्माण हो गयी थी । अशिक्षित एवं अर्ध्द-शिक्षित सामान्य जनता तंत्र मंत्र आदि बाह्य आचारों में उलझने लगी थी ।

उन्होंने वेदविहित शुभ-कार्यों और भागवत भक्ति की ओर से मुख मोड़ लिया था । अतः जनजीवन क्षुब्ध और त्रस्त हो गया था । दुर्भिक्षता के कारण लोगों की दशा दयनीय थी । अधिकांश लोगों को इसके कारण भूख से व्याकुल होकर अपना प्राण गँवाना पड़ा था । हिन्दू समाज निर्धन था । उसके पास आजीविका के लिए कोई साधन उपलब्ध नहीं था । वह शोषित एवं पीड़ित था । इसके संबंध में डॉ॰ शिवकुमार शर्मा ने लिखा है - " उन हिन्दुओं के पास धन संचित करने के कोई साधन नहीं रह गए थे और उनमें से अधिकांश को निर्धनता, अभावों एवं आजीविका के लिए निरन्तर संघर्ष में जीवन बिताना पड़ता था ।"[6] कृषकों से विभिन्न कर वसूल किए जाते थे । राजा के कर्मचारी उनकी लूट-खसोट करते थे । महामारी का प्रकोप भी इसी समय संकट बनकर आया था । अतः प्रजा असहाय बन गयी थी ।

मुगल शासकों में कुछ शासक उदार थे, तो कुछ धर्मान्ध बने हुए थे । फिरोज तुगलक, सिकन्दर लोधी आदि धर्मान्ध मुगल-शासक थे । किन्तु शेरशाह, हुसेनशाह बंगाली आदि मुगल शासक उदार थे । अकबर एक कुशल एवं कुटनीतिज्ञ शासक होने के बावजूद महाविलासी था । अबुल फ़जल ने लिखा है कि इसके जनानखाने में पाँच हजार से अधिक हिन्दू, मंगोल, पारसी और आरमीनियत आदि अनेक वर्गों की स्त्रियाँ थीं । जहाँगीर भी अत्यंत विलासी और शराबी शासक था । मुगल शासक नारी के संबंध में दुर्बल थे । इन्होंने कई बार किसी अन्य शासक की सुन्दर पत्नी, कन्या या बहन की प्राप्ति के लिए आक्रमण किये थे । उदा॰अल्लाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड एवं गुजरात पर सुंदर स्त्री की प्राप्ति के लिए ही आक्रमण किए थे । अकबर के धर्म-भाई आदम खाँ ने मालवा पर विजय प्राप्त करके दो सुन्दरियाँ अपने लिए रख दी थीं । जहाँगीर ने नूरजहाँ को प्राप्त करने के लिए उसके पति का वध किया था । मुगल शासकों के यहाँ हजारों स्त्रियाँ होती थीं । मुगल शासकों का जीवन माँस, मदिरा, नारी इन तीनों में केंद्रित था । किन्तु बादशाह शाहजहाँ को प्रजा के सुख-दुःख का भी ध्यान था । गुजरात, खानदेश और दक्खिन में जब अकाल पड़ा तब इसने उन प्रान्तों के लगान में छूट दी थी । अनाज भी मुफ्त में बाँट दिया था ।

इस युग के लोगों में घमंड, झूठ अभिमान, अविश्वास और विषयवासना की प्रवृत्ति अधिक थी । धर्म का पतन हो रहा था । इस युग के लोगों की मनोवृत्ति के संबंध में डॉ॰कुमुदिनी पाटील ने कहा है- " इस समय चोर चतुर समझे जाते । भाँड भडुए लोग ही राजा और मालिक के प्रिय बने हुए थे । सत्यवादी, सदाचारी को अपमानित किया जाता था । मन, वचन, कर्म से झूठे लोग वक्ता माने जाते थे । ऐसे समय जनता उँच-नीच, धर्म-अधर्म के बारेमें कुछ खयाल न करते हुए संतान तक को बेचकर अपने जीवन का निर्वाह करती थी । "[7] इस तरह लोग आदर्शहीन बन गये थे । उनका जीवन संयत और विवेकपूर्ण नहीं था ।

इस युग में नारी सामाजिक अधःपतन का कारण मानी गयी थी । नारी को सम्मान नहीं दिया जाता था । परिवार में कन्या के जन्म से ही उदासी छा जाती उसे एक दान की वस्तु के रूप में देखा जाता था । किन्तु राजपूत माता ने अपनी वीरता और त्याग की भावना से समाज में अपने लिए गौरवमय स्थान बना लिया था । राजपूत युवक अपनी माँ का आदर करते हुए अपना परम कर्तव्य निभाता था । दूसरी ओर नारी पर प्रतिबन्ध लगाये गये थे । उसका सहधर्मिणी रूप उपेक्षित होने लगा था उसे कामिनी और भोग्या का रूप प्राप्त हुआ था । राजरानियाँ सैन्य-संचालन और राज्य-संचालन में अपना सहयोग देती थीं । मुसलमान स्त्रियों में परदा पध्दति थी । डॉ॰हरिश्चन्द्र वर्मा और डॉ॰रामनिवास गुप्त ने हिन्दू स्त्रियों की परदा पध्दति के दो कारण स्पष्ट किये हैं --

§1§ शासक वर्ग की स्त्रियों का अनुकरण करना ।

§2§ सामाजिक मर्यादा और शील की रक्षा के लिए पर्दे का सुरक्षा-साधन के रूप में प्रयोग करना । इस संबंध में राजनाथ शर्मा ने लिखा है - " मुस्लिम शासकों से त्रस्त हो हिन्दुओं ने सामाजिक रूप से अपने को संकुचित दीवारों में घेरना प्रारम्भ कर दिया । मुस्लिम शासकों की नजरों से अपनी स्त्रियों को बचाने के लिए पर्दा प्रथा को अपनाया और फिर बाल-विवाह होने आरम्भ हो गए ।"[8] मुसलमान एक ही समय पर चार पत्नियाँ रखकर अपनी आर्थिक सम्पन्नता एवं वैभव का प्रदर्शन करते थे । उनकी पत्नियाँ उनके

अधीन रहती थी । वे घर की आंतरिक व्यवस्था की अधिकारिणी थीं । वे पति के लिए अपना जीवन समर्पित कर देती थीं । पति के जीवनकाल में मर जाने में वे अपने आपको धन्य समझती थीं । इस काल में सती की प्रथा का पालन होता रहा । हिन्दू विधवा का जीवन एक भीषण अभिशाप बना था । इस काल में नारी का अपहरण हो जाता था । अतः स्त्री की स्वतंत्रता में बाधा निर्माण हो गयी थी । हिन्दू को समाज की अनेक परपंराओं का सामना करना पड़ा । इस संबंध में डॉ॰ध्रुवभट्टाचार्य ने कहा है - " बालविवाह प्रथा, पर्दा प्रथा, कन्यावध की प्रथा, सती और जौहर की भयंकर परंपरा आदि का हिन्दू पूरे जोरों से पालन कर रहे थे ।"[9] इस तरह समाज का पतन होता रहा । समाज की चेतना का ह्रास हुआ ।

शिक्षा :

इस युग में रातदिन होते युध्दों के कारण शिक्षा के क्षेत्र में अव्यवस्था आ गयी । पंडित लोग अपनी पाठशालाओं में अध्यापन का कार्य करते थे । इन पाठशालाओं की मदद के लिए शिष्यों द्वारा गुरु-दक्षिणा और राजाओं से अनुदान मिलता था। इस युग में "गुरु" को बड़ा सम्मान मिल जाता था । मुसलमान बालक मकतबों में जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे ।

राजपरिवार एवं अभीजात वर्ग में स्त्री-शिक्षा का प्रसार था । राजपरिवार की स्त्रियों नें अपनी विद्वता एवं योग्यता के आधार पर समाज में अपना रोब जमाया था । रुपमती, पद्मावती आदि स्त्रियाँ शिक्षित थीं ।

धार्मिक परीस्थिति :

इस युग में धर्म, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में महान विभूतियों ने जन्म लिया । उन्होंने हमेशा स्वधर्म की रक्षा के लिए कष्ट उठाया और " यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत " की उक्ति को चरितार्थ किया । स्वधर्म रक्षा की प्रवृत्ति उनमें मुस्लिम शासकों की धार्मिक प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के स्वरुप में आ गयी थी;

क्योंकि हिन्दू धर्म पर निरन्तर आक्रमण होता रहा था । हिन्दू धर्म और संस्कृति नष्ट करने का प्रयत्न किया जा रहा था । धर्मस्थान और मंदिरों को गिराया गया, मूर्तियाँ भी तोडी गयीं । धर्म के प्रवर्तकों पर मुगलों ने अत्याचार किया । मुसलमानों ने अपने धर्म का प्रचार परोक्ष और अपरोक्ष रूप में कर दिया । उन्होंने हिन्दुओं को तलवार का भय दिखाकर धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित किया । हिन्दू धर्म को नष्ट करने के लिए इन्होंने साम, दाम, दण्ड, भेद आदि उपायों को अपनाया था । ऐसी स्थिति में हिन्दू धर्म संकट में पडा और हिन्दूओं की स्थिति चिंताजनक बन गयी । डॉ॰सुमन शर्मा के अनुसार - " इस युग की परिस्थिति इस बात की द्योतक थी कि मूर्ति के उपासक कितने निर्बल, अशक्त और संकट में थे और दूसरी ओर मूर्ति-भंजक कितने बलवान और ऐश्वर्यवान थे ।"[10] मुस्लिम शासक गैर मुस्लिम जनता को एक तो इस्लाम धर्म या मौत स्वीकारने के लिए बाध्य करते थे अथवा उनसे "जजिया" कर वसूल करते थे । यह कर भारी था; जो बड़ी निर्दयता से वसूल किया जाता था । निर्धन लोगों को यह कर देना संभव नहीं होता था । फलतः वे धर्म-परिवर्तन कर लेते थे । डॉ॰गणपतिचन्द्र गुप्त ने इसके संबंध में कहा है कि अकबर और उसके परवर्ती शासकों ने इस कर को हटा दिया था । औरंगजेब ने इसे पुनः लागू किया । जिन्होंने इसका विरोध किया उन्हें हाथी से कुचलवा दिया गया था । अतः हिन्दू-समाज आत्मवंचना का जीवन जीने लगा था । उसकी धर्मभावना दबती जा रही थी । इस जीवन से मुक्ति पाने के लिए कुछ धर्मप्रवर्तकों ने धार्मिक आंदोलन खडा किया अर्थात् भक्ति-आंदोलन का उदय हुआ । इस युग की धार्मिक स्थिति को देखकर डॉ॰प्रभातजी ने कहा - " यह युग धार्मिक आंदोलनों का युग था ।"[11]

इस युग में प्रधान रूप से भक्ति की दो शाखाएँ थीं - §1§ सगुणभक्ति शाखा
§2§ निर्गुणभक्ति शाखा

सगुणोपासकों ने हिन्दू समाज का विघटन दूर करने की कोशिश की । निर्गुणोपासकों ने उदारता से हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों के लोगों को समान दृष्टि से देखा था । इन्होंने संप्रदाय, धर्म, जाति का भेद मिटाकर मानवता का पाठ पढ़ाया और सब को एक सूत्र में पिरोने की चेष्टा की थी ।

धार्मिक दृष्टि से भक्तिकाल महत्वपूर्ण था । संपूर्ण भारतवर्ष में विविध भक्तिधाराओं, धार्मिक संप्रदायों और पंथों का आस्तित्व था । इस काल में प्रमुख चार धार्मिक पंथ थे --

§अ§ कबीर पंथ

§ब§ गोरख पंथ

§क§ सिख पंथ

§ड§ दादू पंथ

इस युग में निम्नलिखित छः धार्मिक संप्रदायों का उल्लेख मिलता है ।

§1§ वल्लभ संप्रदाय

§2§ निम्बार्क संप्रदाय

§3§ रामस्नेही संप्रदाय

§4§ राधा-स्वामी संप्रदाय

§5§ हरिदासी संप्रदाय

§6§ चैतन्य संप्रदाय

इस काल में सभी संप्रदायों में परस्पर संघर्ष था ; किन्तु सभी संप्रदायों के प्रवर्तकों ने लोकजीवन में मानवीयता की भावना पिरो दी । हर एक संप्रदाय के सिध्दान्तों में भिन्नता थी । अतः वे दूसरे संप्रदायों के लोगों को हीन समझते थे । इसके संबंध में रामबहोरी शुक्ल ने लिखा है - " धर्म के विभिन्न सिध्दान्तों के प्रवर्तक अपनी बातों की सत्यता और श्रेष्ठता तथा दूसरे सम्प्रदायों के विचारों की असारता और हेयता के प्रतिपादन के लिए आकाश-पाताल एक करते । वाक्‌युध्द, तर्क-वितर्क एवं खण्डन-मण्डन ही उस युग के धर्म-ध्वजों का काम रह गया ।"[12]

डॉ॰शिवकुमार शर्मा भारतीय धार्मिक स्थिति को तीन भागों में बाँटते हैं ।

§1§ बौध्द धर्म

§2§ वैष्णव धर्म

§3§ सूफी धर्म

महात्मा बुध्द का महानिर्वाण हुआ । उसके बाद बौध्द धर्म के दो संप्रदाय बन गए । उसमें पहला था हीनयान; इसमें अधिक कट्टरता थी । इसका दृष्टिकोण संकुचित था । दूसरा था महायान; इस संप्रदाय में रही अधिक उदारता के कारण यह संप्रदाय विकृत बनता गया । हीनयान में दार्शनिक जटिलता थी तो महायान में व्यावहारिकता का समावेश था । महायान संप्रदाय के लोगों ने पूरी जनता के लिए अपने धर्म का द्वार खोला । परिणामतः इसमें असंस्कृत, अशिक्षित और निम्न श्रेणी के लोग अधिक थे । महायान के चमत्कार ने लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया । जंत्र-मंत्र की प्रधानता के कारण इसका नाम " मन्त्रयान " पड़ा । इसमें नारी, मद्य, मांस, आदि के भोग को महत्व दिया गया । इस तरह महायान बुरी वृत्तियों और विलासिता का केंद्र बन गया।

शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट ने बौध्द धर्म का विरोध किया । इन्होंने वैदिक धर्म की स्थापना की । फलस्वरूप बौध्द धर्म का ह्रास हुआ । शंकराचार्य जी ने अद्वैतवाद का प्रचार किया । इस धर्म के नाम पर अनैतिक कर्म,जादू-टोने, हठयोग,स्त्री देवताओं की उपासना आदि का प्रचार हुआ । इसके बाद रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि दार्शनिकों ने अपने-अपने भक्ति के मार्गों का प्रचार और प्रसार किया । इन्होंने परमात्मा के संबंध में अपने विभिन्न सिध्दान्तों को और दृष्टिकोण को लोगों के सामने रख दिया । इन सभी संप्रदायों के विचारों का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा ।

शंकराचार्य के मायावाद को समाज ने ग्रहण किया । सामान्य जनता ब्रह्मवाद, मायावाद के प्रति आकर्षित हो गयी थी । समाज में कर्मकाण्ड व्याप्त था । कर्मकाण्डी लोग अंधभक्त होकर स्नान करते, तिलक-छापा लगाते, विधिवत-पूजादि करवाते थे । पाप से मुक्ति पाने के लिए कथाएँ सुनाते थे । ये लोग समाज में प्रतिष्ठित समझे जाते थे । सिध्दनाथों की विचारधाराओं से प्रेरित विभिन्न संप्रदाय परंपरागत वैदिक धर्म का विरोध करते रहे । इन्होंने योग-सिध्दि के चमत्कारों से जनता को प्रभावित किया । इस्लाम के साथ कुछ लोगों ने नाथ-संप्रदाय एवं एकेश्वरवादी विचारों को अपना लिया था सिध्दों ने अपने वामाचार और ब्राहमणों ने अपने पाखंडों से लोगों को ठगा था । अतः

धर्म में अनाचार बढ़ा था । रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि इन वज्रयानी सिध्द एवं नाथपन्थी योगियों ने जनता को आत्मकल्याण और लोककल्याण के विधायक सच्चे कर्मों के लिए जाग्रत नहीं किया । उन्होंने जनता को कर्मक्षेत्र से हटाने की कोशिश की । इसलिए सच्चे धर्म-भाव का लोप इस समय होता रहा ।

इस युग में प्रधान रूप से वैष्णव भक्ति का आस्तित्व रहा । पूरे भारत में इसका प्रचलन था । भक्ति की महिमा के संबंध में आचार्य शुक्ल ने कहा है - " इस युग में भक्ति का प्रवाह इतना विस्तृत एवं प्रबल था कि उसके लपेट में केवल हिंदू जनता ही नहीं, देश में बसनेवाले सहृदय मुसलमानों में से भी न जाने कितने आ गए"[13] विष्णु के दो अवतारों राम और कृष्ण की भक्ति को श्रेष्ठ माना जाने लगा । दक्षिण भारत में रामानन्द ने भगवान राम को लोकरक्षक रूप में प्रस्तुत किया । रामानंद ने उस काल की धार्मिक एवं सामाजिक संकीर्णता को देखते हुए राम की भक्ति का प्रचार किया । विष्णु के दूसरे अवतार श्रीकृष्ण को लेकर कुछ आचार्योंने अपने संप्रदाय चलाए । इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध के कृष्ण के रूप को प्रकट किया । इन दोनों के कारण जनता का ध्यान भक्ति में मग्न हो गया । इन सभी संप्रदायों ने अपने-अपने प्रवर्तकों को श्रेष्ठ माना ।

सूफी संप्रदाय के लोगों ने भारतीय अद्वैतवाद को अपने ढंग से अपनाया । उन्होंने लोगों को प्रेम द्वारा ईश्वर की उपासना करने का उपदेश दिया । इस पंथ के लोगों में उदारता की भावना थी । इस संप्रदाय के बारेमें डॉ॰हरिश्चन्द्र वर्मा, डॉ॰रामनिवास गुप्त ने लिखा है - " सूफी संप्रदाय सारे उत्तर भारत में फैल चुका था । सूफी सन्तों ने साम्प्रदायिक सीमाओं से उमर उठकर हिन्दू धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य के प्रति उदारतावादी दृष्टिकोण अपनाया ।"[14] इस तरह सूफी पंथ के भक्तों और सुधारकों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया निष्कर्षतः इस युग में अनेक धर्मों, संप्रदायों और पंथों का आस्तित्व था ।

आर्थिक परीस्थिति :

आर्थिक दृष्टि से इस युग में दो वर्ग बने थे- §1§ पहला वर्ग उन व्यक्तियों का था; जो राजा के दरबार से संबंधित था । यह वर्ग शोषकों का था । इनका जीवन सुखी और संपन्न था ।

§2§ दूसरा वर्ग सामान्य जनता का था; जो अपना जीवन अभावों और दुःख से जी रहा था । यह वर्ग शोषितों का था । हमेशा यह वर्ग आर्थिक शोषण में पिसा जा रहा था । लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी । गोस्वामी तुलसीदासजी के अनुसार -

" कलि बारहिं बार दुकाल परै,
बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै । "

किसानों की जीविका का साधन खेती था । परंतु प्राकृतिक प्रकोप के कारण उनकी स्थिति इसतरह बनी थी-

" देव न बर्षिही धरनि बए न जामहिं धान । "

इस युग में राजा की विलासिता का और सैनिकों की पूरी उपजीविका का पूरा खर्च किसान और कारीगरों पर निर्भर था । ग्रामोद्योग से भी लोग अपनी जीविका निभाते थे । युध्दों के दिनों में किसानों की लूटमार होती थी । सुलतान, राजा, व्यापारी, साहुकार " उपभोग के स्वामी " बन गये थे । श्रमजीवी सामान्य लोगों का हमेशा शोषण होता रहा था । अतः इनका पूरा जीवन संघर्षमय था । इस युग की आर्थिक स्थिति का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास इसतरह करते हैं -

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका विहीन लोग सिधमान सोच बस
कहै एक-एकन सौं, कहाँ जायँ का करी ।"

राजा प्रजा के प्रति उदासीन था । प्रजा असहाय बनी थी । किसान-मजदूरों से बड़ी निर्दयता से लगान वसूल किया जाता था । जिन लोगों में लगान देने की समर्थता नहीं होती; उनके बच्चों और स्त्रियों को गुलाम बनाया जाता था । इस युग की आर्थिक विपन्नता के संबंध में डॉ॰हरिश्चन्द्र वर्मा और डॉ॰रामनिवास गुप्त ने लिखा है - " बच्चे एक-एक रुपये से भी कम कीमत पर बेच दिये जाते थे । मुगल काल में गुलामी की प्रथा प्रचलित थी । जो किसान राजस्व अदा नहीं कर पाते थे; उन्हें परिवार सहित दासता की बेड़ी पहना दी जाती थी ।"[15] इन दिनों महामारी का प्रकोप एक भयानक संकट बनकर आया था ।

इस तरह महामारी का प्रकोप, दरिद्रता, बेरोजगारी, राजा का निर्दय होकर कर वसूल करना, अकाल आदि के कारण प्रजा का आर्थिक जीवन विवशपूर्ण एवं निराधार बना । अतः सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था ।

दार्शनिक परिस्थिति :-

इस युग में भक्ति-भावना का प्राधान्य था ; किन्तु यह कोरा भक्ति-भाव न होकर उसके पीछे दर्शन की परंपरा थी । इसमें मुख्य रूप से दर्शन की तीन धाराओं का समावेश था ।

(1) वैदिक धर्म को प्रमाण माननेवाली धारा
(2) वैदिक धर्म का विरोध करनेवाली धारा
(3) पश्चिम से आनेवाली धारा

वैदिक धर्म को प्रमाण माननेवाली धारा में वेदान्त के अनेक व्याख्याता हो गए । उनमें शंकराचार्य का अद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद , वल्लभाचार्य का शुध्दाद्वैतवाद, मध्वाचार्य का द्वैतवाद और निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद आदि का समावेश रहा । वैदिक धर्म का विरोध करनेवाली धारा में बौध्द धर्म का महायान, सिध्द संप्रदाय, नाथ और संत संप्रदाय आदि की प्रधानता थी । पश्चिम से आनेवाली धारा में बा-शरा मुसलमान, बे-शरामुसलमान का आस्तित्व था ।

साहित्यिक परिस्थिति :

किसी भी युग का साहित्य उस युग की परिस्थितियों का प्रमाण होता है; किन्तु भक्तिकालीन साहित्य इस बात के लिए अपवाद है । भक्तिकाल का साहित्य विशाल एवं व्यापक है । इस साहित्य का प्रमुख उद्देश्य सिध्दांत प्रतिपादन और भक्ति का प्रचार है । यह साहित्य धर्म एवं शांतिप्रधान है । यह साहित्य धार्मिक दृष्टि से तीन भागों में बंट गया है । §1§ सन्त §2§ सूफी §3§ वैष्णव ।

इस काल में सभी विचारकों ने अपने विचारों को छन्दोबध्द रूप दिया । इस संबंध में टीकाएँ और व्याख्याएँ संस्कृत में लिखी गयीं । कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि समर्थ कवियों की रचनाओं का उद्देश्य भक्ति-भावना एवं समाज सुधार था। इन कवियों ने मनुष्य के लौकिक और पारलौकिक जीवन में विकास लाने का प्रयत्न किया । इन्होंने जाति-भेद, उँच-नीचता और धार्मिक आडंबरों का विरोध किया तथा मनुष्य को आंतरिक पवित्रता का महत्व बता दिया । इस युग के कवियों की श्रेष्ठता के संबंध में डॉ. भगवानदास तिवारी ने लिखा है - " इन कवियों ने प्रत्येक मनुष्य को काम, क्रोध,मद, लोभ, मोह से बचकर चलने की चेतावनी दी तथा कंचनकामिनी की आशा-तृष्णा के त्याग का उपदेश दे मानवीय नैतिक स्तर को उँचा उठाने का प्रयास किया।"[16]

हिन्दुओं के उच्च वर्ग ने अपने विचारों को संस्कृत भाषा में अभिव्यक्त किया मुगलों ने राजकाज के लिए फारसी भाषा को स्वीकारा । अतः अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों और कविताओं की रचना फारसी भाषा में हो गयी । इस भाषा में संस्कृत के अधिकांश ऐतिहासिक तथा धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद हुआ । कुछ मुगल बादशाह, शहजादे, प्रादेशिक मुगल शासक, हिंदू राजा, संपन्न लोग आदि ने "हिंदी" भाषा को प्रोत्साहन दिया; किन्तु संस्कृत और फारसी के समान हिन्दी को महत्व न मिला । इस काल में पद्य में लिखने की परिपाटी थी । राजस्थानी की कुछ वचनिकाएँ, व्रजभाषा की वार्ताएँ और टीकाएँ मात्र गद्य में लिखी गई हैं ।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

बादशाहों तथा राजाओं के आश्रित कवियों की रचनाओं का विषय प्रशस्ति, श्रृंगार, रीति, नीति आदि है । इन्होंने अपनी रचनाएँ दो प्रकारों में की हैं- प्रबंध और मुक्तक । इस काल में अनेक साहित्य-शैलिओं का प्रयोग भी हुआ है ।

सूफी संतों ने मानवीय मन में प्रेम-तत्व का बीज बो दिया तथा कृष्ण-भक्त कवियों ने प्रेम के साथ आत्मानंद का स्वीकार किया । ज्ञानमार्गी सन्तों ने जीव और ब्रह्म में एकता स्थापित की और सगुणोपासकों ने भक्त और भगवान में प्रत्यक्ष संबंध को स्पष्ट किया । इन सब भक्तों के विचारों से भक्ति साहित्य श्रेष्ठ बन गया है । इसके संबंध में डॉ॰शिवकुमार शर्मा ने कहा है - " भक्ति काव्य जहाँ उच्चतम धर्म की व्याख्या करता है, वहाँ उसमें उच्च कोटि के काव्य के दर्शन होते हैं इसकी आत्मा भक्ति है, इसका जीवन-स्त्रोत रस है, उसका शरीर मानवीय है । रस की दृष्टि से भी यह साहित्य श्रेष्ठ है । यह साहित्य एक साथ हृदय, मन और आत्मा की भूख को तृप्त करता है । यह साहित्य लोक तथा परलोक को एक साथ स्पर्श करता है ।"[17] भक्ति साहित्य भारतीय संस्कृति एवं आचार विचारों का प्रतीक है । अतः पूरे हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल का साहित्य उच्चतम है ।

सांस्कृतिक परिस्थिति :

संगीत, स्थापत्य, शिल्प एवं चित्रकला में इस युग की सांस्कृतिकता का बोध होता है ।

(अ) संगीत =

इस युग में संगीत-शास्त्र के विकास में श्रेष्ठ गायकों ने अपना योगदान दिया । उदा॰ तानसेन, बैजू बावरा आदि । इनके नाम संगीत के इतिहास में अमर हैं । इस काल में " मान कुतुहल " नाम का संगीत ग्रंथ रचा गया । इसके रचनाकार ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर थे ।

तानसेन ने भी "मीयाँ की मल्लार" और "दरबारी कानडा" का आविष्कार किया था । इस युग में भारतीय और इरानी संगीत को महत्व मिला । तथा संगीत में राग-रागनियों का प्रयोग हुआ था ।

§ब§ <u>स्थापत्य एवं शिल्प</u> :

इस युग के शिल्पों में समन्वयात्मकता लाने की कोशिश की गयी है - उदा० एलोरा का कैलास मंदिर और खजुराहो का वैधनाथ मंदिर । राजस्थान के राणा कुंभा ने कीर्तिस्तम्भ, कुंभस्वामी आदि के मंदिर बनवाए । ताजमहल और लाल किले का निर्माण इसी समय हुआ । इसमें ईरानी और भारतीय वास्तुकला का समन्वय है ।

§क§ <u>चित्रकला</u> :

चित्रकला की दृष्टि से यह युग महत्वपूर्ण रहा था । इसमें नायक-नायिकाओं के मोहक, आकर्षक चित्र बनाए गए । इन चित्रकलाओं में हिन्दु और मुस्लिम दोनों की चित्रकला का मिलन हुआ । इस युग की सांस्कृतिकता के संबंध में डॉ० शिवकुमार शर्मा ने लिखा है - " इसी काल में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ एक-दूसरे के निकट आईं । संगीत, चित्र, भवन निर्माण कलाओंमें दोनों संस्कृतियों के उपकरणों में समन्वय आरंभ हो गया ।"[18] इस तरह भारतीय संस्कृति के अनुसार भक्तिकाल में समन्वयात्मकता यह महत्वपूर्ण विशेषता रही थी ।

<u>निष्कर्ष</u> :

किसी भी कवि की कृतियों का अध्ययन करने के लिए उस युग के राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक आदि का अध्ययन करना महत्वपूर्ण होता है; क्योंकि कवि की कृतियों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य पडता है । मीराँ पर भी तत्कालीन परिस्थितियों का --

कुछ असर हो गया है ।

इस युग में मुगलों का शासन था । पूरा भारतवर्ष अनेक छोटे-छोटे हिस्सों में बँट गया था । इस काल में दिल्ली पर लोधी, तुगलक और मुगल शासकों का राज्य स्थापित हो चुका था । फ्लतः पूरे भारत में विदेशी शासकों का राज्य था । भारत पर हमेशा आक्रमण होते रहते थे । आक्रमणों का मुख्य उद्‌देश्य शक्ति प्रदर्शन, सत्ता और सुन्दरी की प्राप्ति था । आपस के आक्रमणों के कारण यह युग अशांत, असुरक्षित बना था । मुगल शासकों ने हिन्दू धर्म नष्ट करके इस्लाम धर्म की स्थापना करने का संकल्प किया था । परिणामतः हिन्दूओं में उदासीनता फैल गयी थी । शासन व्यवस्था में भी अस्त-व्यस्तता आ गयी थी । कुछ मुगल शासक सत्तालोलुप और कट्‌टर सांप्रदायिक थे तो कुछ मुगल शासक उदार थे ।

इस युग में अधिकांश मुगल शासक, राजदरबारी लोग, जागीरदार और मनसबदार विलासी, शराबी और जुल्मी थे । इन्होंने प्रजा का शोषण किया था । अपने घोर पराभव के और अत्याचारी मुगल शासकों के कारण स्वदेशी हिन्दू राजाओं में रहा-सहा स्वाभिमान नष्ट हो गया था । हिन्दू राजा कर्तव्यपराङ्•गमुख होकर विलासिता की जिंदगी जीने लगे । मुगल शासक और हिंदू राजाओं का ध्यान प्रजा की ओर नहीं था इसलिए सामान्य जनता में रही आशा और आस्था की भावना का लोप हो रहा था । मुगल शासकों ने सत्ता प्राप्त करने के लिए हिंसा का मार्ग अपनाया था । इन लोगों ने हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन करने के लिए प्रेरित किया । जो लोग धर्म-परिवर्तन के लिए विरोध करते थे; उनकी हत्या तक की जाती थी ।

मुगल शासन में जनता पराधीन बन गयी थी ।उसमें रहा-सहा गौरव और अभिमान नष्ट हुआ । उसे शक्तिशाली मुगल शासकों के आगे घुटने टेकने पड़े । अतः प्रजा का जीवन संत्रस्त बन गया । राजा का कठोर दण्ड, महामारी, दारिद्रय, अकाल आदि के कारण प्रजा दयनीय बन गयी । नारी को इस युग में सम्मान नहीं

मिला । नारी को एक दान की वस्तु के रूप में देखा गया । मात्र कुछ राजपूत स्त्रियों ने अपनी वीरता और त्याग के कारण समाज में अपना योग्य स्थान निर्माण किया; परंतु इस युग में नारी को पर्दा, बालविवाह, सती, जौहर आदि प्रथाओं का पालन करना पड़ा । कुछ लोग मुगल शासकों के गुलाम बने थे । लोगों में अंधश्रध्दा और उँच-नीचता की भावना थी । सामाजिक दृष्टि से हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों और विचारधाराओं में संघर्ष था ।

इस युग में न चाहते हुए भी हिन्दुओं को मुसलमान धर्म स्वीकारना पड़ा । फलतः हिन्दू समाज बलहीन होता गया । मुगल शासकों ने अपने धर्म का प्रचार-प्रसार ही नहीं किया, अपितु हिन्दुओं के मंदिर, तीर्थक्षेत्र आदि को उध्वस्त करने का क्रम जारी रखा था । बौध्दों, नाथों, सिध्दों की साधना विकृत बनती गयी थी । लोग तंत्र-मंत्र, गुप्त धन के लिए साधना आदि पर विश्वास कर रहे थे । हिन्दू धर्म में अनेक संप्रदाय और पंथ निर्माण हो गये थे । इन लोगों में साधना, उपासना के साथ-साथ आपस में अपने-अपने सिध्दांतों और दृष्टिकोण को लेकर झगड़ा था । इसतरह धार्मिक पृष्ठभूमि पर हिन्दू धर्म की नयी चेतना "भक्ति-आंदोलन" के रूप में समाज में प्रचलित हो गयी थी । धर्म की दृष्टि से इस काल में बौध्दों, वैष्णवों और सूफियों का प्राधान्य रहा था ।

इस युग में आर्थिक दृष्टि से जनता सुखी नहीं थी । राजा लोग प्रजा का शोषण कर रहे थे । लोगों के पास उपजीविका का कोई साधन नहीं था ।

इस युग में प्रमुख विशेषता " भक्ति-भावना" थी । इस भक्ति-भावना को दार्शनिक परंपरा प्राप्त थी । इस भक्ति में वैदिक धर्म को प्रमाण माननेवाली धारा में वेदान्त के अनेक व्याख्याता हो गए; जिन्होंने अपना-अपना अलग दृष्टिकोण स्पष्ट किया था । इस काल के भक्ति-काव्य में भक्ति-आंदोलन से प्रेरित सभी कवियों की रचनाओं का समावेश है ।

इस काल का संपूर्ण काव्य भक्ति-भावना से प्रेरित था । यह काव्य विशाल और व्यापक था । सूरसागर, रामचरितमानस, पद्मावत आदि अमर काव्यों की रचना इसी काल में हुयी ।

मुस्लिम शासकों से संस्कृत और देशी भाषाओं के साहित्य, संगीत और कला को प्रेरणा मिली । मुगल शासकों और हिन्दू राजाओं ने हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन दिया साहित्यिकता की दृष्टि से सब से महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस युग का साहित्य हृदय, मन और आत्मा को तृप्त करनेवाला साहित्य है । यह साहित्य भारतीय संस्कृति, धर्म, आचार विचारों पर आधारित है ।

सांस्कृतिकता की दृष्टि से यह युग महत्वपूर्ण रहा है । क्योंकि इस युग में संगीत, स्थापत्य, शिल्प, चित्रकला आदि कलाओं में खूब प्रगति हो गयी थी । संगीतशास्त्र के विकास में अनेक श्रेष्ठ गायकों ने अपना योगदान दिया था । वास्तुकला में भारतीय और इरानी दोनों शैलियों का प्रयोग हुआ । चित्रकला में भी हिन्दू और मुस्लिम दोनों कलाओं का मिलन हो गया था । इस तरह संगीत, चित्र, स्थापत्य, एवं शिल्प आदि कलाओं में हिन्दू और मुस्लिम दोनों संस्कृतियों का समन्वय हो गया था ।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

§1§ डॉ॰ शेखावत कल्याणसिंह,
"मीराँबाई का जीवनवृत्त एवं काव्य"
पृष्ठ क्र॰ 173
हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर
प्रथम संस्करण - 1978॰

§2§ डॉ॰ शर्मा सुमन,
"मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का सामाजिक विवेचन"
पृष्ठ क्र॰181
विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक - वाराणसी - 1
प्रथम संस्करण - 1974॰

§3§ डॉ॰ तिवारी भगवानदास
"मीराँ की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन
पृष्ठ क्र॰ 2
साहित्य-भवन §प्रा§ लिमिटेड के॰पी॰कक्कड रोड इलाहाबाद - 211 003॰
प्रथम संस्करण - 1974॰

§4§ डॉ॰ शुक्ल रामबहोरी
"हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास"
पृष्ठ क्र॰ 91
इन्द्रचद्र नारंग हिन्दी - भवन 312 रानी मंडी इलाहाबाद 3
प्रथम संस्करण - 1956॰

§5§ डॉ॰गुप्त गणपतिचन्द्र
"हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास"
पृष्ठ क्र॰151
लोकभारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद
द्वितीय संशोधित संस्करण - 1978॰

(6) डॉ॰ शर्मा शिवकुमार,
"हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ"
पृष्ठ क्र॰ 113
अशोक प्रकाशन नई सडक दिल्ली - 6
अष्टम संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण - 1980॰

(7) डॉ॰ पाटील कुमुदिनी
"संत ज्ञानेश्वर एवं तुलसीदास : तुलनात्मक अध्ययन"
पृष्ठ क्र॰ 285
चिन्तन प्रकाशन 787/14 पशुपतिनगर नौबस्ता कानपुर - 208021
प्रथम संस्करण - जून 1989॰

(8) शर्मा राजनाथ
" साहित्यिक निबंध "
पृष्ठ क्र॰ 30
विनोद पुस्तक मन्दिर कार्यालय - रांगेय राघव मार्ग आगरा - 2
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1974

(9) डॉ॰ ध्रुवभट्टाचार्य
" भक्तिकालीन काव्य में नायिका भेद "
पृष्ठ क्र॰ 10
इंद्रप्रस्थ प्रकाशन के-71 कृष्णनगर, दिल्ली - 110051
प्रथम संस्करण - 1979॰

(10) डॉ॰ शर्मा सुमन
" मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का सामाजिक विवेचन "
पृष्ठ क्र॰ 188
विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक - वाराणसी - 1
प्रथम संस्करण - 1974॰

§11§ डॉ॰ प्रभात
" मीराँबाई "
पृष्ठ क्र॰ 15
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, हीराबाग - बंबई - 4
प्रथम संस्करण - 1965 जनवरी

§12§ शुक्ल रामबहोरी,
" हिन्दी साहित्य का उद्भवऔर विकास "
पृष्ठ क्र॰ 97
इन्द्रचन्द्र नारंग, हिन्दी भवन 312 रानी मंडी इलाहाबाद 3
प्रथम संस्करण - 1956॰

§13§ शुक्ल रामचंद्र,
" हिन्दीसाहित्य का इतिहास "
पृष्ठ क्र॰ 65
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
संशोधित और प्रवर्ध्दित, चौदहवाँ पुनर्मुद्रण संवत् - 2019

§14§ डॉ॰ वर्मा हरिश्चन्द्र, डॉ॰ गुप्त रामनिवास
" हिन्दी साहित्य का इतिहास "
पृष्ठ क्र॰ 81
मंथन पब्लिकेशन्स 34 ल॰ मॉडल टाउन रोहतक - 1
प्रथम संस्करण - 1982॰

§15§ डॉ वर्मा हरिश्चन्द्र, डॉ॰ गुप्त रामनिवास
" हिन्दी साहित्य का इतिहास "
पृष्ठ क्र॰ 77
मंथन पब्लिकेशन्स 34 ल॰ मॉडल टाउन रोहतक - 1
प्रथम संस्करण - 1982॰

{16} डॉ॰ तिवारी भगवानदास
" मीरां की भक्ति और उनकी काव्य - साधना का अनुशीलन "
पृष्ठ क्र॰9
साहित्य भवन {प्रा} लिमिटेड के॰पी॰कक्कड रोड
इलाहाबाद - 211003
प्रथम संस्करण - 1974

{17} डॉ॰ शर्मा शिवकुमार
" हिन्दीसाहित्य युग और प्रवृत्तियाँ "
पृष्ठ क्र॰ 115
अशोक प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली - 6
अष्टम संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण - 1980

{18} डॉ॰ शर्मा शिवकुमार
" हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ "
पृष्ठ क्र॰ 116
अशोक प्रकाशन, नई सडक - दिल्ली - 6
अष्टम संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण - 1980॰